# भाषा और संप्रेषण

**डॉ. चैनपाल सिंह**
उप-निदेशक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो

भाषा मनुष्य के संप्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम और भावबोध का अन्यतम साधन है। भाषा के माध्यम से मनुष्य न केवल अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकता है, बल्कि उन्हें दूसरों तक संप्रेषित भी कर सकता है। संप्रेषणव्यवहार के संदर्भ में हम देखते हैं कि इसके एक ओर यथास्थिति संबोधकरूप में कोई वक्ता अथवा लेखक होता है, जो किसी 'संदेश' को संप्रेषित करता है और दूसरी ओर संबोधितरूप में यथास्थिति कोई श्रोता अथवा पाठक होता है, जो उस संदेश को ग्रहण करता है। संबोधकरूप में वक्ता अथवा लेखक और संबोधितरूप में श्रोता अथवा पाठक के बीच संप्रेषणव्यवहार के माध्यम के रूप में भाषा का प्रयोग किया जाता है। भाषा के माध्यम से ही संबोधकरूप में वक्ता अथवा लेखक अव्यक्त संदेश की अभिव्यक्ति करता है और इसी भाषा में अभिव्यक्त संदेश को संबोधितरूप में श्रोता अथवा पाठक अर्थ के रूप में ग्रहण करता है। अभिव्यक्ति का साधन ध्वनि होती है, जिसमें संबोधकरूप में वक्ता अपने संदेश को भाषाबद्धकर मुख से उसका उच्चारण करता है और संबोधितरूप में श्रोता उसे सुनकर उसका अर्थग्रहण करता है, जबकि भाषा के लिखित रूप में भाषिक अभिव्यक्ति का साधन लेखन होता है, जिसमें संबोधकरूप में लेखक अपने संदेश को लिखकर अभिव्यक्त करता है और संबोधितरूप में पाठक पढ़कर उसका अर्थग्रहण करता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि एक भाषिक व्यवस्था का प्रयोग करनेवाला व्यक्ति वक्ता एवं श्रोता–दोनों ही रूपों में भाषा का प्रयोग करता है, अर्थात् वक्ता के रूप में जैसे वह अर्थ अथवा संकल्पना को ध्वनिरूप दे सकने की क्षमता रखता है, वैसे ही श्रोता के रूप में वह ध्वनि से अर्थ तक पहुँचने की क्षमता भी रखता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हम अपने विचारों को दूसरों तक भलीभाँति संप्रेषित करने और दूसरों के विचारों को स्वयं भलीभाँति ग्रहण करने के लिए भाषा का आश्रय लेते हैं। हम न केवल आमने-सामने रहकर एक-दूसरे के साथ अपने विचारों का भलीभाँति आदान-प्रदान करते हैं, बल्कि भाषा के माध्यम से स्थान और समय की दूरी को लाँघकर अपने विचारों को दूसरों तक भलीभाँति संप्रेषित करने में भी समर्थ होते हैं। हमारे जीवन के विभिन्न कार्यकलापों का भाषा के साथ इतना गहरा संबंध होता है कि उसके बिना हमारा सामाजिक अस्तित्व ही संभव नहीं है। भाषा के संप्रेषणव्यवहार के माध्यम से ही हम अपने भाषाई समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ अपना संबंध स्थापित करते हैं, उनके साथ विचारविनिमय करते हैं और एक-दूसरे का सहयोग प्राप्त करते हैं। अतः डॉ. भोलानाथ तिवारी का यह कथन सर्वथा ठीक ही है कि "भाषा मानव के उच्चारण-अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनिप्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाजविशेष के लोग आपस में विचारविनिमय करते हैं, लेखक, कवि या वक्ता के रूप में अपने अनुभवों एवं भावों आदि को व्यक्त करते हैं तथा अपने

वैयक्तिक और सामाजिक व्यक्तित्व, विशिष्टता तथा अस्मिता के संबंध में जाने-अनजाने जानकारी देते हैं।"

संसार में विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोग रहते हैं, किंतु कोई भी मानवसमुदाय ऐसा नहीं होगा, जिसके पास संप्रेषणमाध्यम के रूप में भाषा न हो। भाषा समाज एवं सामाजिक संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। किसी सामाजिक व्यवस्था का एक अंग बनकर जब मनुष्य समाज में रहता है, तो वह अपनी छोटी-बड़ी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहता है और उन सदस्यों के साथ किसी-न-किसी प्रकार संपर्क स्थापित करना उसके लिए अनिवार्य हो जाता है। हालांकि संपर्क स्थापित करने के लिए संप्रेषण के माध्यम तो और भी हो सकते हैं, जैसे सांकेतिक भाषा, चिह्नों या तस्वीरों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण आदि, किंतु अन्य किसी भी संप्रेषणव्यवस्था की अपेक्षा अधिक सशक्त, प्रभावशाली एवं सक्षम व्यवस्था मानवभाषा ही है, जिसके द्वारा मनुष्य़ अपने विचारों को एक सुव्यवस्थित ध्वनिरूप प्रदान करता है। मानव स्वभाव से ही सोचने-समझनेवाला एक विचारशील प्राणी है, जो हर समय नए-नए विचारों एवं आविष्कारों को जन्म देता रहता है। यह मानवभाषा की जीवंतता ही है कि वह मनुष्य की प्रत्येक संप्रेषण-आवश्यकता के अनुरूप स्वंय अपना रूप परिवर्तित करने में सक्षम है।

वस्तुतः भाषा के सिवाय कोई और ऐसा साधन है ही नहीं, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों पर भलीभाँति प्रकट कर सके और दूसरों के विचारों को स्वयं स्पष्ट रूप से समझ सके। मनुष्य के संपूर्ण कार्य उसके विचारों से उत्पन्न होते हैं और इन कार्यों में दूसरों की सहायता अथवा सम्मति प्राप्त करने के लिए उसे उन विचारों को दूसरों पर प्रकट करने की आवश्यकता होती है। जगत् का अधिकांश व्यवहार बोलचाल अथवा लिखा-पढ़ी से चलता है, इसलिए भाषा जगत् के व्यवहार का मूल है। भाषा के द्वारा हम केवल एक-दूसरे के विचारों को ही नहीं जान लेते, बल्कि उसकी सहायता से हमारे विचार भी उत्पन्न होते हैं। किसी विषय पर  सोचते समय हम एक प्रकार का मानसिक संभाषण करते हैं, जिससे हमारे विचार आगे चलकर भाषा के रूप में प्रकट होते हैं। इसके अतिरिक्त, भाषा हमारी धारणाशक्ति को स्थिरता भी प्रदान करती है। यदि हम अपने विचारों को एकत्र करके भाषाबद्ध कर लें, तो आवश्यकता पड़ने पर हम उन्हें एक लेख के रूप में देख सकते हैं और बहुत समय बीत जाने पर भी हमें उनका स्मरण हो सकता है। इसलिए भाषा की उन्नत अथवा अवनत अवस्था राष्ट्रीय उन्नति अथवा अवनति का प्रतिबिंब होती है, प्रत्येक नया शब्द एक नए विचार का चित्र होता है और भाषा का इतिहास मानो उसके बोलनेवालों का ही इतिहास होता है। इस संदर्भ में भाषाविषयक निम्नलिखित कतिपय अन्य मूलभूत तथ्यों का उल्लेख करना भी अप्रासंगिक नहीं होगाः

बहरे और गूँगे मनुष्य अपने विचार संकेतों से प्रकट करते हैं। बच्चा केवल रोकर अपनी इच्छा जताता है। कभी-कभी केवल मुख की चेष्टा से ही मनुष्य के विचार प्रकट हो जाते हैं। कोई-कोई लोग

बिना बोले ही संकेतों के द्वारा बातचीत करते हैं। किंतु इन सब संकेतों को लोग ठीक-ठीक नहीं समझ सकते और न ही इनसे सब विचार ठीक-ठीक प्रकट हो सकते हैं। इसलिए, इस प्रकार की सांकेतिक भाषाओं से शिष्ट समाज का काम नहीं चलता। इसी प्रकार, पशु-पक्षी आदि भी जो बोली बोलते हैं, उससे दुख, सुख, भय आदि मनोविकारों के सिवाय और कोई बात नहीं जानी जा सकती। केवल मनुष्य की भाषा से ही सब विचार भलीभाँति प्रकट होते हैं, इसलिए मानवभाषा व्यक्त भाषा कहलाती है और दूसरी भाषाएं या बोलियां अव्यक्त कहलाती हैं। यही कारण है कि मानवभाषा को मनुष्य की वागेन्द्रियों से उत्पन्न यादृच्छिक एवं रूढ़ ध्वनिप्रतीकों की एक ऐसी व्यवस्था कहा गया है जिसके द्वारा किसी मानवसमुदाय के सदस्य अपने विचारों का आदान-प्रदान करने में सक्षम होते हैं।

मनुष्य़ की यह भाषा कभी स्थिर नहीं रहती, इसमें सदैव परिवर्तन हुआ करते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि कोई भी प्रचलित भाषा एक हज़ार वर्ष से अधिक समय तक एकजैसी नहीं रह सकती। उदाहरण के लिए, जो हिंदी हम लोग आजकल बोलते हैं, वह हमारे प्रपितामह आदि के समय में ठीक इसी रूप में न तो बोली जाती थी और न ही उन लोगों की हिंदी वैसी थी, जैसी महाराज पृथ्वीराज चौहान के समय में बोली जाती थी। यदि हम अपने पूर्वजों की भाषा की खोज करें, तो हमें अंत में एक ऐसी हिंदीभाषा का पता चलेगा जो हमारे लिए एक अपरिचित भाषा के समान कठिन होगी। किंतु भाषा में यह परिवर्तन धीरे-धीरे होता है–इतना धीरे-धीरे कि हमें मालूम नहीं होता, पर अंत में इन परिवर्तनों के कारण नई-नई भाषाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

भाषा पर स्थान, जलवायु और सभ्यता का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बहुत-से शब्द जो एक देश के लोग बोल सकते हैं, दूसरे देश के लोग तदवत् नहीं बोल सकते। जलवायु में हेर-फेर होने के कारण लोगों के उच्चारण में अंतर पड़ जाता है। इसी प्रकार, सभ्यता की उन्नति के कारण नए-नए विचारों के लिए नए-नए शब्द बनाने पड़ते हैं, जिससे भाषा का शब्दकोश बढ़ता जाता है। इसके साथ ही बहुत-सी जातियां अवनत होती जाती हैं और उच्चभावों के अभाव में उनके वाचक शब्द भी लुप्त होते जाते हैं। इसके अतिरिक्त, विद्वानों और ग्रामीण मनुष्यों  की भाषा में भी कुछ अंतर रहता है। किसी शब्द का जैसा उच्चारण विद्वान लोग करते हैं, वैसा सर्वसाधारण लोग नहीं कर सकते। इससे प्रधान भाषा बिगड़कर उसकी शाखारूप नई-नई बोलियां बन जाती हैं और भिन्न-भिन्न दो भाषाओं के पास-पास बोले जाने के कारण उन दोनों के मेल से एक नई बोली उत्पन्न हो जाती है।

भाषागत विचार प्रकट करने में एक विचार के प्रायः कई अंश प्रकट करने पड़ते हैं। उन सभी अंशों के प्रकट करने पर ही उस समस्त विचार का आशय अच्छी तरह से समझ में आता है। प्रत्येक पूरी बात को वाक्य कहते हैं। प्रत्येक वाक्य में प्रायः कई शब्द रहते हैं। प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि होता है, जो कई मूल ध्वनियों के योग से बनता है। जब हम बोलते हैं, तब शब्दों का प्रयोग करते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्यों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों को काम में लाते हैं। यदि हम शब्द

का ठीक-ठीक प्रयोग न करें, तो हमारी भाषा में बड़ी गड़बड़ी उत्पन्न हो जाए, और संभवतः कोई भी हमारी बात को न समझ सके। हाँ, भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वे किसी-न-किसी कारण से कल्पित किए गए हैं, तो भी जो शब्द जिस वस्तु का सूचक है, उसका इससे प्रत्यक्ष में कोई संबंध नहीं होता। हाँ, शब्दों ने अपने वाच्यपदार्थ आदि की भावना को अपने में बाँध-सा लिया है, जिससे शब्दों का उच्चारण करते ही उन पदार्थों का बोध तत्काल हो जाता है। कोई-कोई शब्द केवल अनुकरणवाचक होते हैं, पर जिन सार्थक शब्दों से भाषा बनती है, उनके आगे ये शब्द बहुत थोड़े रहते हैं।

उपर्युक्त से तात्पर्य यह है कि विचारों की अविरल धारा की अभिव्यक्ति के लिए मानवभाषा जिन ध्वनियों का प्रयोग करती है, वे ऊपर से एक अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में दिखाई पड़ती हैं। यदि हम इस ध्वनिप्रवाह का विश्लेषण करें, तो विचार अथवा संकल्पना से जुड़ी कई विविक्त इकाइयां उभरकर सामने आती हैं, जैसे-ध्वनिप्रवाह की 'वाक्य'-जैसी इकाई में कई शब्द मिलेंगे और प्रत्येक शब्द में 'स्वनिम'-जैसी कई लघुतर इकाइयां मिलेंगीं। मानवभाषा का यह अभिलक्षण भाषाप्रवाह को विविक्त इकाइयों के संचितकोष के रूप में देखने को बाध्य करता है।

किसी संदेश के भाषाई रूप का विश्लेषण करने पर एक स्तर पर तो वे विविक्त इकाइयां मिलती हैं, जो आर्थी दृष्टि से न्यूनतम इकाइयां होती हैं और दूसरे स्तर पर वे इकाइयां मिलती हैं, जो अर्थभेदक प्रकार्य तो करती हैं, किंतु स्वयं अर्थहीन होती हैं, जैसे ध्वनिस्तर पर 'स्वनिम'। पहले स्तर की इकाइयां विचारों की न्यूनतम इकाई का रूप लेती हैं, जिन्हें रूपिम की संज्ञा दी जाती है, जैसे- 'फल, फूल, दौड़, पढ़' आदि और दूसरे स्तर पर प्रकार्यात्मक इकाइयां होती हैं, जो दो शब्दों में अर्थभेद करती हैं, 'जैसे काल-खाल'-इन दो शब्दों में ध्वनिक्रम – 'क्+आ+ल्' और 'ख्+आ+ल्' है। इन दोनों शब्दों के अर्थ अलग-अलग होने का कारण केवल 'क' या 'ख' है, जबकि 'क' और 'ख' स्वयं अर्थहीन हैं। इस प्रकार मानवभाषा एक साथ दो अभिरचनाओं की सिध्दि का परिणाम है, जिनमें पहली अभिरचना विचारसिध्दि की न्यूनतम इकाइयों का परिणाम है, तो दूसरी अभिरचना प्रभेदनसिध्दि की इकाइयों का परिणाम है।

किसी ध्वनिप्रतीक के पीछे क्या भाव है, क्या संकल्पना है– इनमें कोई भौतिक संबंध नहीं होता। एक संकल्पना के लिए एक भाषा में कोई एक ध्वनिक्रम होता है, तो दूसरी भाषा में दूसरा ध्वनिक्रम और यह चुनाव पूर्णतया यादृच्छिक होता है। इसी प्रकार, एक भाषा की वाक्यरचना में 'कर्ता+कर्म+क्रिया' के क्रम का प्रयोग क्यों होता है, या एक भाषा उपसर्गों का प्रयोग करती है तो दूसरी भाषा परसर्गों का प्रयोग क्यों करती है–यह किसी कारण अथवा तर्क के आधार पर नहीं, बल्कि पूरी तरह से यादृच्छिक होता है।

जब हम उपस्थित लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं, तब बहुधा कथित अथवा मौखिक भाषा काम में लाते हैं, पर जब हमें अपने विचार दूरवर्ती मनुष्य के पास पहुँचाने का काम पड़ता है, अथवा भावी संतति के लिए उनके संग्रह की आवश्यकता होती है, तब हम लिखित भाषा का प्रयोग करते हैं। लिखित भाषा में शब्द की एक-एक मूल ध्वनि को पहचानने के लिए एक-एक चिह्न नियत कर लिया

जाता है, जिसे वर्ण कहते हैं। ध्वनि कानों का विषय है, पर वर्ण आँखों का, और ध्वनि का प्रतिनिधि है। पहले-पहल केवल मौखिक भाषा का प्रचार था, पर बाद में विचारों को स्थायी रूप देने के लिए कई प्रकार की लिपियां निकाली गईं। वर्णलिपि निकालने के बहुत समय पहले तक लोगों में चित्रलिपि का प्रचार था जो आजकल भी पृथ्वी के कई भागों के जंगली लोगों में प्रचलित है। मिस्र के पुराने खंडहरों और गुफाओं आदि में पुरानी चित्रलिपि के अनेक नमूने पाए गए हैं और इन्हीं से वहाँ की वर्णमाला निकली है। इस देश में भी कहीं-कहीं ऐसी पुरानी वस्तुएं मिली हैं, जिनपर चित्रलिपि के चिह्न मालूम पड़ते हैं। कोई-कोई विद्वान यह अनुमान करते हैं कि प्राचीन समय से चित्रलेख के किसी-किसी अवयव के कुछ लक्षण वर्तमान वर्णों के आकार में मिलते हैं, जैसे- 'ह' में हाथ और 'ग' में 'गाय' के आकार का कुछ-न-कुछ अनुकरण पाया जाता है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही विचार के लिए बहुधा भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं, उसी प्रकार एक ही मूल ध्वनि के लिए उनमें भिन्न-भिन्न अक्षर भी होते हैं।

जैसा कि पहले संकेत किया गया है, भाषा हमारे संप्रेषण का माध्यम ही नहीं, अपितु हमारे भावबोध का साधन भी है। हम भाषा के माध्यम से ही सोचते हैं और भाषा के माध्यम से ही किसी विचार को समझते और समझाते हैं। अतः हमारे स्मृतिकोष और चिंतनप्रक्रिया का आधार मूलतः भाषा ही है। हमारा संपूर्ण चिंतन वस्तुतः भाषा का ही चिंतन है। मानवमन की सृजनात्मक शक्ति की अनुपम देन के रूप में यह भाषा ही बाह्य जगत् और हमारे भावबोध के बीच एक सेतु का काम करती है। यही कारण है कि भाषा की व्याकरणिक कोटियों के रूप में जिस लिंग, वचन, काल आदि की बात की जाती है, वे भौतिक जगत् के स्वीकृत तथ्यों से भिन्न होते हैं। उल्लेखनीय है कि भौतिक जगत् का लिंग व्याकरणिक लिंग नहीं होता, अन्यथा निर्जीव पदार्थों को संकेतित करने वाले शब्दों को हम पुल्लिंग या स्त्रीलिंग रूप में ग्रहण नहीं करते और न ही एक ही भौतिक वस्तु को संकेतित करने वाले दो पर्यायवाची शब्दों में हम लिंगभेद की कल्पना करते। इसी प्रकार, बाह्य जगत् के भौतिक धरातल पर वचन की दृष्टि से जो 'एकवचन' है, वह भाषाप्रयोग के संदर्भ में 'बहुवचन' हो सकता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को लिया जा सकता हैः-

| भाषाप्रयोग | भौतिक धरातल | भाषिक संदर्भ |
|---|---|---|
| 1. तू कहाँ से आ रहा है? | एक व्यक्ति | एकवचन |
| 2. (क) तुम कहाँ से आ रहे हो ? | एक व्यक्ति | बहुवचन |
| (ख) आप कहाँ से आ रहे हैं ? | एक व्यक्ति | बहुवचन |
| 3. (क) तुम लोग कहाँ से आ रहे हो ? | एक से अधिक व्यक्ति | बहुवचन |
| (ख) आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ? | एक से अधिक व्यक्ति | बहुवचन |

उपर्युक्त भाषाप्रयोग के 2 (क) और (ख) वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भौतिक धरातल पर संख्या में जो 'एक' है, वह भाषाबोध के संदर्भ में 'बहुवचन' है। संप्रेषण के अंतर्गत, भाषाबोध के संदर्भ में

'वचन' केवल संख्या को ही व्यक्त नहीं करता, वह वक्ता के सामाजिक बोध का संवाहक भी होता है। किसे हम अपने से निम्न या उच्च स्तर का समझते हैं, किसे हम आत्मीय और घनिष्ठ, किसे हम आदर की दृष्टि से देखते हैं और किसे तुच्छ समझते हैं, कौन-सा व्यवसाय हमें उच्चवर्ग के निकट ले जाता है और कौन-सा निम्नवर्ग की ओर–ये सारी चीज़ें हमें संसार को देखने की दृष्टि देती हैं और इसी दृष्टि पर हमारा वचनबोध आधारित रहता है। इसीलिए, हम एक ओर कहते हैं- 'वन्दना चली गई है' तो दूसरी ओर बोलते हैं- 'वन्दना जी चली गई हैं।' इसी प्रकार, कहा जाता है कि 'मज़दूर आज आया था' पर उसके साथ बोला जाता है– 'प्रोफ़ेसर आज आए थे।' बड़ों के संदर्भ में हम कहते हैं कि 'बड़े भाई साहब आज आए थे' पर छोटों के संदर्भ में बोलते हैं कि 'छोटा भाई आज आया था।'

भाषा के माध्यम से जिस प्रकार हम भौतिक धरातल के लिंग और वचन को अपने विचारबोध में रूपांतरित कर लेते हैं, उसी प्रकार 'भौतिक काल' को भी हम 'व्याकरणिक काल' में बदल लेते हैं। यही कारण है कि एक ओर विगत घटना को हम भूतकाल से जोड़ सकते हैं और उसे वर्तमानकाल की सीमा में भी खींच सकते हैं। निम्नलिखित वाक्यों से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती हैः

| भाषाप्रयोग | भौतिक धरातल | भाषिक संदर्भ |
|---|---|---|
| 1.(क) गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस की रचना की थी। | विगत | भूतकाल |
| (ख) गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस की रचना की है। | विगत | वर्तमानकाल |
| 2.(क) नरेन्द्र एक साल बाद अमेरिका जाएगा। | भावी | भविष्यत् काल |
| (ख) नरेन्द्र एक साल बाद अमेरिका जा रहा है। | भावी | वर्तमानकाल |

उपरिलिखित तथ्यों के आधार पर, हम कह सकते हैं कि संप्रेषण की दृष्टि से लिंग, वचन, काल आदि विभिन्न व्याकरणिक कोटियों का आधार हमारा भावबोध होता है और वे भौतिक धरातल की इकाइयां न होकर भाषिक स्तर की संकल्पनात्मक इकाइयां होती हैं।